शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अहिंसा : नैतिक अहिंसा और करुणामय जीवन पद्धतियाँ

शरणपाल सिंह
सम्राट अशोक सुभारती स्कूल ऑफ़ बुद्धिस्ट स्टडीज
स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय
मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

बौद्ध धर्म में अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचने का ही सिद्धांत नहीं है बल्कि यह एक व्यापक नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण है जो करुणा, सह-अस्तित्व, और मन की शांति पर आधारित है, जो व्यक्ति को अपने भीतर और बाहरी दुनिया में संतुलन बनाए रखने की शिक्षा देती है। अहिंसाजीवन जीने की करुणामय पद्धति का आधार है। जैन धर्म और बौद्ध धर्म में एक सिद्धांत में रूप में अहिंसा का प्रमुख स्थान है। बौद्ध धर्म में अहिंसा को मानसिक शारीरिक और वाचिक रूपों में विभाजित किया गया है और इसका मूल उद्देश्य समता, स्वतंत्रता और बंधुता के आधार पर सभी प्राणियों के प्रति करुणा और मैत्री का विकास करना है। शोध में यह दर्शाया गया है कि बौद्ध धर्म में अहिंसा केवल एक नैतिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि निर्वाण या उच्चतम आध्यात्मिक विकास प्राप्त करने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इसमें बताया गया है कि बौद्ध धर्म में 'अहिंसा चित्त की शुद्धता व स्थिरता से जुड़ी है। हिंसा करने से न केवल दूसरों को कष्ट होता है बल्कि स्वयं के मन का भी संतुलन एवं शांति खंडित होती है। इसके विपरीत मैत्री और करुणा के निरंतर अभ्यास से मन के नकारात्मक भाव समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है। साथ ही इस शोध पत्र में बौद्ध धर्म की तुलना अन्य धर्मों से की गई है विशेष रूप से इस्लाम, हिंदू और जैन धर्म से जिसमें अहिंसा के सिद्धांत को भिन्न-भिन्न तरीकों से अपनाया गया है। अहिंसा और करुणा के अभ्यास से व्यक्ति नैतिक, मन की शांति और आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है, जो बुद्धत्व की ओर अग्रसर होने के मार्ग में अनिवार्य है।

बीज शब्द *: अहिंसा, मैत्री, करुणा, कुशलता, ब्रह्मविहार, करणीय मेत्त, बोधिसत्व, चित्त, निब्बान*

प्रस्तावना

'अहिंसा' और 'नैतिकता' (जो अविभाज्य रूप से सम्बंधित है), शब्द भारतीय संस्कृति में कब सम्मिलित हुए यह कहना तो कठिन है शायद अहिंसा और नैतिकता अपने अर्थ के अनुसार मानव सभ्यता के साथ विकसित हुए। लेकिन एक बात जो तथ्यों के आधार पर विश्वास के साथ कहीं जा सकती है कि सबसे पहले अहिंसा और नैतिकता के तत्व को धर्म के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार करने का श्रेय निश्चित ही जैन धर्म को जाता है। उसके बाद भगवान बुद्ध ने 'अहिंसा और नैतिकता' को बुद्धत्व के मार्ग के अभिन्न अंग के रूप में स्थापित किया। 'अहिंसा' एक व्यापक नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण है जो करुणा, सह-अस्तित्व और मन की शांति पर आधारित है। अहिंसा को जितने गहरे, व्यापक एवं सम्यक अर्थ में बौद्ध धर्म में आचरण हेतु प्रस्तुत किया गया है, उतना अन्य किसी धर्म परंपरा या दर्शन में नहीं मिलता। क्योंकि बुद्धत्व या मन के विकास के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने का मार्ग अहिंसा से होकर जाता है। मन के विकास की प्रक्रिया का 'चित्त शुद्धि' या कुशल मानसिक अवस्था से प्रत्यक्ष संबंध है।

हिंसात्मक स्वभाव न केवल पीड़ित प्राणी या व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक दुख पहुंचाता है बल्कि हिंसा करने वाले व्यक्ति के मन की स्थिरता व अखंडता छिन्न-भिन्न होने के साथ-साथ 'मन' और अधिक अकुशलता से भर जाता है, जो व्यक्ति को अपने भीतर और बाहरी दुनिया में संतुलन बनाए रखने में मदद करती है। इसके विपरीत अहिंसात्मक स्वभाव में मूलभूत तत्व समता, स्वतंत्रता व बंधुता अंतर्निहित होते हैं, जो किसी भी मानव व प्राणी के जीवन जीने के मूलभूत अधिकारों को परिभाषित करते हैं और जिनके अभाव में मन का विकास तो दूर, साधारण रूप से जीवन जीना भी असंभव बात है।

बौद्ध धर्म में हिंसा का अर्थ

स्वयं या किसी भी अन्य जीवित प्राणी (मानव सहित) को शारीरिक या मानसिक रूप से जानबूझकर दुःख पहुंचाना ही हिंसा है। बौद्ध धर्म में स्वयं के प्रति हिंसा को भी गंभीर प्रकार की हिंसा मानागया है। हिंसा में उन सभी क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो किसी अन्य जीव के प्रति दुर्भावना, छल-कपट, भेदभाव, क्रोध, द्वेष या आक्रामकता से प्रेरित हो। बौद्ध धर्म के अनुसार हिंसा के तीन मुख्य रूप होते हैं :

1 शारीरिक हिंसा - स्वयं को व किसी अन्य जीव को शारीरिक रूप से दुख पहुंचाना, हत्या या फिर आत्महत्या करना।

2 वाचिक हिंसा - कठोर, अपमानजनक या कटु वचनों द्वारा किसी को मानसिक कष्ट पहुंचाना।

3 मानसिक हिंसा : वैमनस्य, छलकपट, भेदभाव, क्रोध, द्वेष या हिंसक विचार रखकर व्यवहार करना, भले ही वे क्रियात्मक न हों, क्योंकि बौद्ध धर्म में मन सर्वोपरि है, सभी बातों का उगम मन में ही होता है

अन्य धर्म परंपराओं में अहिंसा का सिद्धांत

आगे बढ़ने से पहले अन्य धर्मों में अहिंसा के सिद्धांत को किस प्रकार लिया गया है इस पर एक नजर डालना भी आवश्यक है। वास्तव में विश्व में चार ऐसे धर्म है जिनका न केवल अतीत में बहुत प्रभाव रहा है बल्कि आज भी दुनिया के बहुत बड़े भाग पर इन धर्मों का राज है। ये धर्म हैं : ईसाई, मुस्लिम, हिंदू और बौद्ध। बौद्ध धर्म में अहिंसा के सिद्धांत को गहराई से समझने के लिए शेष तीन धर्मों में अहिंसा के सिद्धांत का क्या स्थान है इसको भी संक्षिप्त में देखने की आवश्यकता है।

1 इस्लाम में अहिंसा का सिद्धांत सीधे तौर पर अहिंसा से जुड़ा हुआ नहीं है। लेकिन फिर भी इस्लाम धर्म के कई पहलुओं में हिंसा का निषेध और शांति का समर्थन स्पष्ट रूप से मिलता है। इस्लाम धर्म में न्याय को बहुत अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि बिना न्याय के शांति को स्थापित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त कुरान में जीवन को अल्लाह का अनमोल उपहार माना गया है। किसी निर्दोष की हत्या करना, पूरे मानव जाति की हत्या के समान माना है। कुरान की आयत (5:32) में कहा गया है जिसने एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या की, उसने पूरे मानवता की हत्या की और जिसने एक व्यक्ति का जीवन बचाया, उसने पूरी मानवता को बचाया।"[2] यह सिद्धांत इस्लाम में अहिंसा के सिद्धांत को दर्शाता है। अल्लाह को इस्लाम में 'अल-रहमान' अर्थात सबसे अधिक करुणावान और 'अल-रहीम' अर्थात सबसे अधिक दयावान बताया है। स्वयं पैगंबर मोहम्मद ने जीवन भर करुणा और सहनशीलता का पालन किया और दूसरों को भी वैसा ही व्यवहार करने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा 'जो दूसरों पर दया नहीं करता उस पर अल्लाह दया नहीं करेगा।"[3] लेकिन इस्लाम धर्म में अल्लाह के नाम पर निर्दोष जानवरों की बलि

देना, जिन्हें मनुष्यों के द्वारा बनाये गये किसी भी धर्म से कोई लेना-देना नहीं है, फिर भी धर्म के नाम पर उन्हें मारना किसी भी रूप से उचित व न्याय पूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। यह हिंसा का बहुत ही वीभत्स रूप है, जो हिंसा के सिद्धांत की व्यापकता को सीमित ही नही करता है वरन बहुत कमजोर व स्वार्थपूर्ण बनाता है।

2 जैन धर्म में भी बौद्ध धर्म की तरह ही अहिंसा के सिद्धांत को अपने नैतिक नियमों जिन्हें 'अणुव्रत' और 'महाव्रत' के नाम से जाना जाता है, में प्रथम क्रमांक पर स्वीकार किया गया है।"4 लेकिन जैन धर्म में अहिंसा के सिद्धांत का एक तरफ तो अतिवादी रूप लिया गया है वहीं दूसरी तरफ स्वयं के प्रति हिंसा को अपनाकर अहिंसा के सिद्धांत की काट करता है।

3 हिंदू धर्म में चातुवर्ण्य व्यवस्था मनुष्य के जन्म के आधार पर व्यवहारिक रूप से व्याप्त है तथा जिसमें किस वर्ण को किस तरह से जीना है, उनके क्या अधिकार है, वे क्या प्राप्त कर सकते हैं और क्या नही, यह वर्ण व्यवस्था के अनुसार मनुष्य के जन्म से पहले ही तय होता है।5 यह सिद्धांत मानव मानव में बड़ा भेद निर्माण करता है। एक वर्ण जिसके पास सभी अधिकार हैं वहीं एक दूसरे वर्ण के पास कोई अधिकार नही है। उसमें मनुष्य अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित होने के लिए मजबूर है। किसी को धर्म के नाम पर ईश्वरीय व्यवस्था बता कर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित करना गंभीर प्रकार की हिंसा है। मनुस्मृति केवल वर्णव्यवस्था के आधार पर ही भेद नहीं करती बल्कि समाज में महिलाओं की स्थिति को चिंताजनक बनाने के साथ-साथ उन्हें केवल भोग वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया।6

बौद्ध धर्म में अहिंसा का सिद्धांत

'बौद्ध धर्म' अहिंसा, मैत्री और करुणा के सिद्धांतों पर आधारित एक ऐसा धर्म है जो किसी भी प्रकार की हिंसा को किसी भी रूप में स्वीकार नही करता है। अहिंसा बौद्ध धर्म के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण आधारस्तंभ है। वास्तव में अहिंसा, मैत्री, करुणा, समता और स्वतंत्रता पूर्ण व्यवहार ही नैतिकता है, इसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। जैसा कि यह सर्वविदित है बुद्ध मार्ग पर चलने के लिए अहिंसा पहली शर्त है, जैसा कि शीलों में प्रथम शील ही अहिंसा न करने की प्रतिज्ञा है, शील अर्थात नैतिक मूल्य। जो इस प्रकार है "पाणातिपाता वेरमणि, सिक्खापदं समादियामि" अर्थात प्राणी हिंसा करने से विरत रहने की प्रतिज्ञा करता हूं।7 वास्तव में जब हम इस शील के अर्थ को ऊपरी तौर पर देखते हैं तो इसका अर्थ साधारण ही लगता है। प्राणी हिंसा से विरत रहना एक साधारण-सी बात लगती है, लेकिन जब अर्थ की गहराई में उतरकर देखते हैं तो पता चलता है कि यह साधारण-सा लगने वाला 'वाक्य' बहुत ही सारगर्भित है। यह न्याय व मानवाधिकारों का समर्थन करता है, जो अति मानवीय मूल्य 'मैत्री, 'करुणा' के आधार पर जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

जब हम कहते हैं कि 'मैं प्राणी हिंसा से विरत रहने की प्रतिज्ञा करता हूं, इसका अर्थ है कि यह प्रतिज्ञा शारीरिक, वाचिक व मानसिक किसी भी रूप में प्राणी हिंसा न करने की प्रतिज्ञा है अर्थात हिंसा का भाव मन में भी नहीं आना चाहिए इसके लिए यह प्रतिज्ञा है। लेकिन ऐसा कैसे संभव है कि मन में भी किसी के प्रति हिंसा का भाव न उत्पन्न हो। ऐसा तभी संभव है जब मन से लोभ, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या समाप्त होकर सभी के प्रति समान मैत्री का भाव, करुणा का भाव विकसित हुआ हो। निश्चित ही जब व्यक्ति का मन मैत्री व करुणा से भरा है फिर वहां हिंसा का भाव मन में उपस्थित नहीं रह सकता। और अगर कोई

E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2025

बात हमारे मन में उपस्थित ही नहीं है तो उसका शारीरिक और वाचिक कर्म में उपस्थित होना संभव नहीं, क्योंकि सभी धर्मो का मूल 'मन' है जैसा कि 'धम्मपद' की प्रथम गाथा में ही कहा गया है :

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुद्धेन भासति वा करोति वा॥
ततोनं दुक्खमन्वेति चक्कं श्व वहतो पदं।।**1**।।8

अर्थात सभी शारीरिक, वाचिक और चैतसिक कर्म पहले मन में उत्पन्न होते हैं। मन ही मुखिया है, अतः वे मनोमय हैं। जब व्यक्ति सदोष मन से बोलता है, काम करता है तो वह कष्ट, दुःख को उसी प्रकार भोगता है, जैसे बैलगाड़ी के पहिये बैल के पैरों के पीछे-पीछे आते हैं 8।।1।।

'हींसा' और 'मैत्री' दो विरोधी तत्व हैं। दोनों एक समय उपस्थित नहीं रह सकते। एक की उपस्थिति दूसरे की अनुपस्थिति को दर्शाता है। इसलिए बौद्ध धर्म में हिंसात्मक स्वभाव को पूरी तरह से नष्ट करने का मार्ग 'मैत्री' का विकास है। 'संयुक्त निकाय' के 'उपाधा सुत्त' में आया है कि एक बार श्रद्धेय आनंद मैत्री गुण से प्रभावित होकर बुद्ध से कहते हैं कि 'भगवन ऐसा प्रतीत होता है कि आधे में आपका सारा धम्म और आधे में केवल मैत्री। बुद्ध कहते हैं आनंद! ऐसा मत कह। आनंद दूसरी बार भी वही दोहराते हैं, भगवन मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है कि आधे में आपका सारा धम्म और आधे में केवल मैत्री। भगवन बुद्ध फिर आनंद को कहते हैं कि आनंद! ऐसा मत कहो। आनंद तीसरी बार भी ऐसा ही कहते हैं तब बुद्ध उत्तर देते हैं कि आनंद! ऐसा मत कहो 'मैत्री' आधा धम्म नहीं है बल्कि संपूर्ण धम्म है। यह उदाहरण बौद्ध धर्म में 'मैत्री के विकास' व धम्म मार्ग में मैत्री के आचरण की गहराई को दर्शाता है। बुद्धत्व अवस्था के चार मुख्य गुणों में पहले दो गुण 'मैत्री व करुणा' है। चार 'ब्रह्म विहार' के अनुसार 'बोधीसत्व' मैत्री, करुणा, मुदिता व उपेक्खा में विहार करता है। 'करणीय मेत्त' की सातवीं व आठवीं गाथा में कहा गया है कि :

माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्त मनुरक्खे।
एवम्पि सब्ब धुतेसु, मानसं भावये अपरिमाणं॥9

अर्थात जिस प्रकार माता अपनी जान की परवाह नहीं करके भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव को बढ़ाएं।

मेत्तञ्च सब्ब लोकस्मि मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्ध अधो च तिरियञ्च असम्बाधं अवेरं असपत्तं॥10

अर्थात बिना बड़ा बिना बर वह शत्रुता के ऊपर नीचे आने तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम भाव में मैत्री बढ़ाएं।

इन संदर्भों से पता चलता है कि बौद्ध धर्म में मैत्री व करुणा का आचरण जीवन पद्धति में कितने गहरे व व्यापक अर्थ में लिया जाता है। मैत्री का भाव मन में जितना अधिक प्रबल होता जाएगा, हिंसात्मक स्वभाव उतना ही कमजोर होता जाएगा और मैत्री के निरंतर अभ्यास व आचरण से हिंसात्मक स्वभाव एक दिन पूरी तरह से नष्ट हो जाएगा।

अहिंसा और आध्यात्मिक लक्ष्य

जैसा कि हम जानते हैं कि बौद्ध धर्म में अहिंसा केवल एक नैतिक सिद्धांत नहीं बल्कि एक गहन आध्यात्मिक आचरण व अभ्यास से जुड़ा उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यर 'निर्वाण' प्राप्ति का साधन है अर्थात उच्च आध्यात्मिक स्तर को प्राप्त करने की 'प्रक्रिया' का अभिन्न अंग है, जिसे किसी भी प्रकार से अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस सिद्धांत के अभाव में आचरण या निर्वाण प्राप्ति की प्रक्रिया की कल्पना भी व्यर्थ है। ज्ञान व सद्‌गुणों के उच्चतम कोटि तक के विकास का सूत्र शील, समाधि और प्रज्ञा स्वयं बुद्ध ने दिया है। इस सूत्र को परिभाषित करते हुए बुद्ध कहते हैं किशीलोंके आचरण से ध्यान में वृद्धि होती है, चित्त एकाग्र होता है, चित्त की एकाग्रता से ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके सतत अभ्यास से मन की अकुशलता पर विजय प्राप्त करके ही व्यक्ति कुशल मानसिक अवस्था को प्राप्त करता है अर्थात निर्वाण को प्राप्त करता है। इस सूत्र से पता चलता है कि 'शील' उच्च आध्यात्मिक स्तर प्राप्त करने की प्रक्रिया का मुख्य भाग है। इस प्रक्रिया को समझने के लिए 'शीलों' को समझना आवश्यक है। वास्तव में 'शील' सार्वभौमिक सिद्धांत है जो प्राकृतिक नैतिकता या नैतिक मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं और जिनके सतत अभ्यास से मन की नकारात्मकता या अकुशलता को नष्ट करते हुए अति मानवीय मूल्य मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्खा, या कुशल मानसिक अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। हिंसात्मक स्वभाव एक गंभीर स्वरूप की 'नकारात्मकता' है, जिसका विचार भी मन की स्थिरता व अखंडता को खंड-खंड करने के लिए पर्याप्त है। चित्त की एकाग्रता, मन की शान्ति पर निर्भर करती है और 'शान्ति' चित्त की शुद्धता पर। नकारात्मक भाव चित्त को शांत नहीं होने देते। बौद्ध धर्म के अनुसार उच्च आध्यात्मिक स्तर प्राप्त करने की प्रक्रिया एक 'चित्त' शुद्धि की प्रक्रिया है, इसलिए व्यक्ति कितना भी विद्वान क्यों न हो, कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो लेकिन यदि उसके चित्त में नकारात्मक भाव उपस्थित हैं वह मन के विकास की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंच सकता।

बौद्ध धर्म और अहिंसात्मक व करुणामय जीवन पद्धतियां

यदि बुद्ध की शिक्षा और उनके जीवन का अवलोकन करते हैं तो हम पाते हैं कि उनकी शिक्षा उनके स्वयं के अनुभव पर आधारित है। उन्होंने लोगों को इस बात का उपदेश दिया जो उन्होंने स्वयं अनुभव किया, स्वयं पालन किया। उन्होंने जो कुछ भी कहा वह तर्कशील व अनुभव पर आधारित था। उनके मुख से जो भी निकलता था वह उनके गहरे चिंतन व अनुभव से बाहर आता था, जो एकदम ताजा था, वह ऐसा होता था जो अभी तक अज्ञात था। बुद्ध ने अपनी शिक्षा में अहिंसा, मैत्री व करुणा को दु:ख से मुक्ति या अंतिम सत्य प्राप्त करने के मार्ग के रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत किया। वह मार्ग जो उनकी अपनी स्वयं की खोज थी।

बुद्ध की शिक्षा में अहिंसा, मैत्री और करुणा

शीलों में अहिंसा, मैत्री और करुणा की शिक्षा : बुद्ध ने मुख्य रूप से अहिंसा, मैत्री और करुणा की शिक्षा दी। यह सिद्धांत उनकी संपूर्ण शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में दिखाई देती है। 'इतिवुत्तक' में बुद्ध घोषणा करते हैं, हे भिक्षुओ ! पुनर्जन्म की दृष्टि से किए गए अच्छे कार्यों के लिए जो भी आधार हैं, वे सभी उस सद्भावना अर्थात मैत्री (मेत्ता) के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं, केवल सद्भावना या मैत्री, जो हृदय की मुक्ति है। भिक्षुओ, जिस प्रकार सभी तारों की चमक चाँद की चमक के सोलहवें हिस्से के

बराबर भी नहीं है। उसी प्रकार भिक्षुओ, पुनर्जन्म की दृष्टि से किए गए कार्यों की चमक सद्भावना अर्थात मैत्री (मेत्ता) से किये गये कार्यों की चमक के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं।' ये सन्दर्भ बौद्ध धर्म में मैत्री के महत्त्व को दर्शाता है। पंच शील, अष्ट शील या दस शील में प्रथम 'शील' जैसा कि हम सब जानते हैं हिंसा से विरत रहने शिक्षा देता है और प्रथम सकारात्मक शील मैत्री विकास की। शील अहिंसा, मैत्री और करुणा सहित अन्य सभी नैतिक मूल्यों को गहरे स्तर पर स्वभाविक रूप से विकास करने में मदद करते है। त्रिपिटक में शीलों के कई संदर्भ मिलते हैं, जिसमें शील नकारात्मक अर्थ में अर्थात क्या हमें नहीं करना है या क्या करने से बचना है तथा सकारात्मक अर्थ में अर्थात क्या करना चाहिए। जैसे हिंसा नहीं करनी चाहिए या हिंसा करने से बचना है चोरी नही करनी है या चोरी करने से बचना है, व्यभिचार नहीं करना है या व्यभिचार से बचना है, झूठ नहीं बोलना है या झूठ बोलने से बचना है, नशा नहीं करना है या किसी भी प्रकार के नशे के सेवन से बचना है, यह शीलों का नकारात्मक रूप है। शीलों का सकारात्मक रूप मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना है या मैत्री का विकास करना है, मुक्त हस्त से दान करना है या दान देने की भावना का विकास करना है, तीसरा सकारात्मक शील, शांति, संतुष्टि का पालन करना है, चौथा शील सत्यपूर्ण, अर्थपूर्ण संवाद करना, मृदु वचनों का उपयोग करना तथा पांचवा सकारात्मक शील प्रज्ञा का विकास करना, जागरूक बनना, स्मृतिमान बनना आदि। इन शीलों का सबसे पहला संदर्भ दीघनिकाय के 'कूटदंत सुत्त' में मिलता है। जिसमें कूटदंत नामक ब्राह्मण जिसके नाम से यह 'सूत्र' है, जो बलि के लिए बहुत सारे जानवरों को इकट्ठा करता है, लेकिन बुद्ध से मुलाकात करने के बाद वह बलि देने का फैसला बदल देता है। बुद्ध उसे एक महान राजा महाविजिता की कहानी सुनाते हैं। जिसमें वह शील बताते हैं। शीलों का दूसरा संदर्भ 'मज्झिम निकाय' के 'सेवितब्बा सुत्त' में भी मिलता है। इस सुत्त में 'बुद्ध' के अग्रणी शिष्य सारिपुत्र भिक्षुओं को संबोधित करते हुए शीलों पर व्याख्यान देते हैं, जो सारिपुत्र ने हाल ही में बुद्ध से सुना था। 'सेवितब्बा सुत्त' दस शीलों का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।[11] इसके अलावा कई अन्य सूत्रों में बुद्ध ने शीलों के विषय में बताया है, जिसमें क्या पालन नहीं करना और क्या पालन करना है अर्थात शीलों का नकारात्मक और सकारात्मक रूप। जैसे इस तरफ और उस तरफ का किनारा धम्म और अधम्म, प्रकाश और अंधकारमय मार्ग इत्यादि। बुद्ध ने चित्तशुद्धि के लिए कई अलग-अलग तरीकों और दृष्टिकोण से शीलों को समझाया है।

चार ब्रह्म विहार में अहिंसा, मैत्री और करुणा की शिक्षा

पालि प्राचीन ग्रंथो में प्रज्ञा की प्राप्ति के मार्ग के रूप में सकारात्मक भावनिक विकास को विशेष महत्व दिया गया है। विशेष रूप से 'चार ब्रह्म विहार' जिसका उल्लेख कई पालिग्रंथो में मिलता है। जैसे 'दीघ निकाय' के 'तेविज्ज सुत्त', (क्छ 13) में 'चार ब्रह्मविहार' का उल्लेख मिलता है। इस सुत्त में भगवान बुद्ध ने 'चार ब्रह्म विहार' को आध्यात्मिक विकास और मुक्ति के मार्गदर्शन के लिए महत्वपूर्ण बताया है। 'मज्जिम निकाय' के 'करणीय मेत्त' में भी 'चार ब्रह्म विहार' का उल्लेख मिलता है। यहां विशेष रूप से मैत्री के विकास पर विशेष जोर दिया गया है। सभी प्राणियों के प्रति बिना किसी भेदभाव के मैत्री और करुणा के भाव को विकसित करना चाहिए। इसके अलावा 'अंगुत्तर निकाय' के 'सुत्तनिपात' में भी चार ब्रह्म विहार का उल्लेख मिलता है। विशुद्धमग्ग के नवां परिच्छेद में चार ब्रह्मविहार का उल्लेख सविस्तार किया गया है। विशुद्धमग्ग में इसका उल्लेख ध्यान के संदर्भ में किया गया है।[12] यहां इन्हें

मन की उच्चतम अवस्था के रूप में देखा गया है, जो चित्तशुद्धि व आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक है।

'ब्रह्मविहार' में 'ब्रह्म' का अर्थ है 'श्रेष्ठ उच्च' और 'विहार' का अर्थ है 'रहना' अर्थात मन की उच्च या श्रेष्ठ अवस्था में रहना। वास्तव में 'ब्रह्मविहार' ध्यान की एक ऐसी श्रृंखला है जो व्यक्ति के भावनात्मक अनुभव को एकीकृत और परिष्कृत करने के लिए बनाई गई है ताकि चार अलग-अलग लेकिन निकटता से संबंधित भावनाओं का विकास किया जा सके। मैत्री या प्रेम पूर्ण भावना, करुणा, मुदिता या सहानुभूति पूर्ण खुशी, उपेक्खा या समभाव। 'मेत्ता' या मैत्री अन्य तीन ब्रह्मविहारों की नींव है। यह अपने शुद्धतम, सबसे मजबूत रूप से सकारात्मक भावना है।

करणीय मेत्ता सुत्त में अहिंसा, मैत्री और करुणा की शिक्षा

इस सुत्त का उल्लेख 'खुद्दक निकाय' के सुत्तनिपात के महावग्ग के पांचवें खंड में मिलता है। यह सुत्त बताता है जो व्यक्ति शांति के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है, उसे शत्रुता, ईर्ष्या, द्वेष को नष्ट करते हुए मैत्री, करुणा की भावना का विकास करना चाहिए। इस सूत्र की शुरुआत 'करणीयमत्थ कुसलेन, यन्तं सन्तं पदं अभिसमेच्च अर्थात 'शान्त पद (निर्वाण) प्राप्त करना चाहने वाले, कल्याण साधन में निपुण व्यक्ति को चाहिये से होती है, इसके बाद सूत्र में योग्य, सरल व अत्यन्त सरल बनें, शीलवान, अल्पभाषी, आसक्तिरहित, निर्दोष कार्य, सभी प्राणियों के प्रति मैत्री व करुणा की समभावना का व्यावहारिक रूप से विकास करने की बात कही गई है जो इस प्रकार है :

करणीयमत्थ कुसलेनए यन्तं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजू च सूजू चए सुवचो चऽस्स मुदु अनतिमानी॥

अर्थात शान्त पद (निर्वाण) प्राप्त करना चाहने वाले, कल्याण साधन में निपुण व्यक्ति को चाहिये कि वह योग्य, सरल व अत्यन्त सरल बनें। उसकी बात सुन्दर, मधुर और विनीत हो।

सन्तुस्सको च सुभरो चए अप्पकिच्चो च सल्लहुकवृत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको चए अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो॥

अर्थात वह सन्तोषी हो, सहज ही पोष्य हो और सादा जीवन व्यतीत करने वाला हो। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों, वह चतुर हो, अल्प भाषी हो और कुलों में आसक्ति रहित हो।

न च खुद्दमाचरे किञ्चिए येन विञ्ञू परें उपवदेय्युं।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तुए सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥

अर्थात ऐसा कोई भी छोटा कार्य न करें जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें और इस प्रकार मैत्री करें कि सभी प्राणी सुखी हों, क्षेमी हों और अत्यन्त सुखी हों।

ये केचि पाणभूतत्थिए तसा वा थावरा वा अनवसेसा।
दीघा वा ये महन्ता वाए मज्झिमा रस्सकाऽणुकथूला॥
दिट्ठा वा ये वा अदिट्ठाए ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा सम्भवेसी वाए सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥

अर्थात ये जो जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान्, मध्यम या ह्रस्व, अणु वा स्थूल दिखाई देने वाले, पास के व दूर के, उत्पन्न या भविष्य में उत्पन्न होने वाले जितने भी प्राणी हैं वे सभी सुखपूर्वक रहें।

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

न परो परं निकुब्बेथ नातिमञ्जे थ कत्थचि नं किञ्चि।
ब्यारोसना पटिघसा नामञ्जस्स दुक्खमिच्छेय्य॥
अर्थात एक-दूसरे की बुराई (वंचना) न करें। कभी किसी का अपमान न करें। वैमनस्य और विरोध के कारण भी एक-दूसरे के दुःख की इच्छा न करें।
वाता यथा नियं पुत्तंए आयुसा एकपुत्त मनुरक्खे
एवम्पि सब्ब भुतेसु मानसं भावये अपरिमाणं॥
अर्थात जिस प्रकार माता अपनी जान की परवाह न करके भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति अपार प्रेम भाव बढ़ावें।
मेत्तञ्च सब्ब लोकस्मि मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्ध अधो च तिरियञ्च असम्बाधं अवेरं असपत्तं॥
अर्थात बिना बाधा, बिना वैर व शत्रुता के ऊपर-नीचे, आडे-तिरछे, सारे संसार के प्रति असीम प्रेम भाव व मैत्री बढ़ावें।
तिट्ठ चरं निसिन्नो वाए सयानो वा यावतस्स बिगतमिद्धो।
एतं सति अधिट्ठय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु॥
अर्थात खडे हुए चलते हुए, बैठे, लेटे अथवा जब तक जागते रहें तब तक इसी प्रकार मैत्री भाव स्मृति बनाये रक्खें, इसी को मैत्री ब्रह्म-विहार कहते है।
दिद्‌वि च अनुपगम्म, सीलवा दस्सनेन सम्पन्नो।
कामेसु विनेय्य गेधं न हि जातु गब्भ सेय्यं पुनरेती॥13
ऐसा करने वाला नर कभी मिथ्या दृष्टि में न पडकर, शीलवान हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो, काम-तृष्णा का नाश कर पुनः जन्म से मुक्त हो जाता है।
उपर्युक्त सन्दर्भ बौद्ध धर्म में न केवल मैत्री, करुणा के आचरण के व्यापक व गहरे स्तर को दर्शाता है बल्कि यह भी दर्शाता है कि उच्च मानसिक अवस्था निब्बान या अंतिम सत्य प्राप्त करने के मार्ग में नकारात्मकता की कल्पना भी व्यर्थ है।
धम्मपद में अहिंसा] मैत्री और करुणा की शिक्षा वास्तव में धम्मपद भी मैत्री, करुणा, प्रज्ञा व शील की शिक्षा देता है। धम्मपद की पांचवी गाथा जो यमक वर्गों से है इस प्रकार है :
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।14
अर्थात 'वैर से वैर शांत नहीं होता अवैर (मैत्री) से ही वैर शांत होता है, यही सनातन धर्म है। वैर को यदि समाप्त करना है तो उसका मार्ग केवल मैत्री है। बुद्ध के धर्म में मैत्री के महत्व व उसकी व्यापकता को दर्शाता है।

बोधिसत्व मार्ग अहिंसा, मैत्री और करुणा की शिक्षा

बुद्धत्व प्राप्ति के अलग-अलग मार्गों में बोधिसत्व का मार्ग विशेषरूप से महायान बौद्ध धर्म का प्रमुख मार्ग है। बौद्ध धर्म में 'बोधिसत्व' एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। इस संकल्पना के अनुसार बोधिसत्व वह व्यक्ति है जिसने 'बुद्धत्व प्राप्त' करने का संकल्प लिया है, लेकिन वह स्वयं के निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रयास

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल
E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2025

नहीं करता बल्कि सभी जीवो की 'दुःख मुक्ति' के लिए प्रयास करता है। 'बोधिसत्व' एक संस्कृत शब्द है, जो दो शब्दों से मिलकर बना है 'बोधि' तथा 'सत्व' इसमें बोधि का अर्थ है, ज्ञान, जागरूकता, लेकिन यह सामान्य अर्थ में या व्यावहारिक अर्थ में 'ज्ञान या जागरूकता' नहीं है। यह सर्वोच्च ज्ञान है, यह जागरूकता 'अंतिम सत्य' के प्रति 'सर्वोच्च सत्य' के प्रति जागरूकता का होना है। परमसत्य को समझना, अस्तित्व के मूल को खोजने तथा सत्य के साथ एकरूप होने का अर्थ 'बोधि' है। 'सत्व' का अर्थ है जीवित प्राणी (केवल मानव नहीं बल्कि कोई भी जीवित प्राणी), इस प्रकार बोधिसत्व का अर्थ है जिसने अपने जीवन को केवल निर्वाण प्राप्ति के लिए समर्पित किया है।15 उस व्यक्ति को 'बोधिसत्व' कहा जाता है। लेकिन यह केवल शब्द का अर्थ है 'बोधिसत्व' शब्द से ध्वनित होने वाला भावार्थ भी है, जिसे समझने की आवश्यकता है। बोधिसत्व शब्द का अर्थ बोधिसत्व के व्यावहारिक संदर्भ के भावार्थ के बिना अपूर्ण है। बोधिसत्व का पूर्ण अर्थ जो भावार्थ के रूप में निकाल कर आता है कि बोधिसत्व स्वयं की मुक्ति या स्वयं के निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करता बल्कि सभी जीवों की निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रयास करता है या सभी जीवों की दुःखमुक्ति के लिए स्वयं को समर्पित करता है।16

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि बुद्ध की शिक्षा, उनका मार्ग नैतिकता, अहिंसा, मैत्री और करुणा का मार्ग है और वह अहिंसात्मक व्यवहार, मैत्री और करुणा केवल मनुष्य तक सीमित नहीं है बल्कि सभी प्राणियों (मनुष्य और जीवों) को समान रूप से शामिल करता है। बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं को मन के विकास की उच्चतम अवस्था (निर्वाण) प्राप्त करने के मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया। जिसकी घोषणा वह स्वयं करते हैं "भिक्षुओ ! जिस प्रकार महासागर के जल का एक ही स्वाद है नमक का स्वाद। इसी प्रकार हे! भिक्षुओ मेरी सारी शिक्षा और विनय का केवल एक ही उद्देश्य है मुक्ति अर्थात निर्वाण। 'खुद्दक निकाय' के उदान में आये इस संदर्भ से स्पष्ट होता है बुद्ध के धर्म का एक ही उद्देश्य है 'निर्वाण' की प्राप्ति' अर्थात मन के विकास की उच्चतम अवस्था, पूर्ण जागरूक अवस्था, अंतिम सत्य को प्राप्त करने की अवस्था, परम शांति की अवस्था जिसका उगम स्वयं के कुशल, शांत, एकाग्र एवं शुद्ध चित्त से होता है। इसका अर्थ यह होता है कि निर्वाण प्राप्ति की सारी प्रक्रिया 'चित्त शुद्धि' की प्रक्रिया है, जो अहिंसा, मैत्री और करुणा के गहरे आचरण के बिना संभव नही है।

सन्दर्भ सूची

1 Sangharakshita, 'The Ten Pillars of Buddhism' published by Windhorse Publications, 21 Hope Street, Glasgow G26AB, -1984, p. no - 47, 48,49

2 यह आयत सीधे तौर पर यहूदी धर्म ग्रन्थ तालमुद से प्रभावित मानी जाती है विशेष रूप से मिशना संहेद्रिन 4:5 से, जिसमें भी इसी तरह का विचार व्यक्त किया गया। आयत 5:32 का संदर्भ पैगम्बर हजरत मूसा और बनी इस्राईल को दिया गया आदेश है, जो हत्या और जीवन की पवित्रता पर आधारित है। इस सन्दर्भ को आप कुरआन शरीफ के सूरहा माइदा की आयत 5:32 में भी विस्तारपूर्वक विवरण मिलता है।

3 इस्लाम में अल्लाहको 'अल.रहमान' (सबसे अधिक करुणावान) और 'अल.रहीम' (सबसे अधिक दयावान) कहा गया है। यह दोनों विशेषण कुरान में बार-बार आते हैं, विशेषकर सूरह अल.फ़ातिहा (1:1) में, जो हर नमाज़ की शुरुआत में पढ़ी जाती है।

E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2025

4 जैन धर्म में नैतिक सिद्धांत 'अणुव्रत' और 'महाव्रत' जो इस प्रकार है : अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (इंद्रिय संयम), और अपरिग्रह (अधिक संग्रह न करना) तत्त्वार्थ सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र धर्म ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है

5 डॉ.अम्बेडकर भीमराव, जाति का विनाश, अनुवादक राजकिशोर व डॉ.सिद्धार्थ, फारवर्ड प्रेस, 803:92 नेहरु प्लेस, नई दिल्ली.110019, द्वितीय संस्करण, जुलाई 2018, पृष्ठ 82 वर्णानाम ब्राह्मणो गुरुः। यह मनुस्मृति के 10वें अध्याय का तीसरा श्लोक है। मनुस्मृति का यह अध्याय वर्णों और उनके कर्तव्यों की चर्चा करता है तथा विस्तार से बताता है कि उनको क्या करना है और क्या नहीं करना है।

5 डॉ.अम्बेडकर भीम राव, हिंदू नारी का उत्थान और पतन सम्यक प्रकाशन, 32.3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली, 110063, तृतीय संस्करण, 2013, पृष्ठ 9

6 मज्झिम निकाय, संकृत्यायन महापंडित राहुल, सम्यक प्रकाशन, 32.3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली, 110063, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ 505

7 धम्मपद, पालि एवं भोटपाठ, अनुवादक एवं व्याख्याकार डॉ. वड्छुग दोर्जे नेगी उपाचार्य, दि कार्पोरेट बॉडी ऑफ दि बुद्धा एज्यूकेशन फाउंडेशन, ताइवान, पृष्ठ 1 (25)

8 सुत्त निपात, अनुवादक डॉ.विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32.3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली 110063, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ 30

9 सुत्त निपात, अनुवादक डॉविमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32.3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली, 110063, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ 30

10 मज्झिम निकाय, संकृत्यायन महापंडित राहुल, सम्यक प्रकाशन, 32.3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली 110063, प्रथम संस्करण 2009, सेवितब्बा सुत्त, पृष्ठ 506, 507

11 विशुद्धि मग्ग, आचार्य बुद्ध घोष, अनुवादक, धर्मरक्षित भिक्षु, गौतम बुक सेंटर, चन्दन सदन, सी 263, गली न. 9 हरदेवपुरी, शाहदरा दिल्ली 63, पृष्ठ 263

12 सुत्त निपात, अनुवादक डॉविमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32.3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली 110063, प्रथम संस्करण 2005, करणीय मेत्त सुत्त, पृष्ठ 30

13 धम्मपद, पालि एवं भोटपाठ, अनुवादक एवं व्याख्याकार डॉ.वड्छुग दोर्जे नेगी, दि कार्पोरेट बॉडी ऑफ दि बुद्धा एज्यूकेशन फाउंडेशन, ताइवान, पृष्ठ 9

14 संघरक्षित उर्गेन भंते, बोधिसत्व आदर्श (मराठी), अनुवादक धम्मचारिणी प्रज्ञामाता, त्रिरत्न ग्रंथमाला, नागलोक, कामठी रोड, नागपुर, पृष्ठ 10

15 वही, पृष्ठ 11

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 Saṃyutta Nikāya - Upādā Sutta (Bhikkhu Jagdish Kashyap, M.A., Trans.). (1956). Mahabodhi Sabha, Sarnath, Banaras.

2. Khuddaka Nikāya, Udāna (4th chapter) (Bhikkhu Jagdish Kashyap, M.A., Trans.). (1956). Indian Buddhist Education Council, Lucknow.

3. Dhammapada (Pali & Tibetan) (V.D. Negi, Trans. & Commentator). (2000). The Corporate Body of the Buddha Education Foundation, Taiwan.

4. Majjhima Nikāya (R. Sanskritayan, Trans.). (1958). Samyak Prakashan.

5. Visuddhimagga (Vol. 1, A. Buddhaghosa, Trans. Bhikkhu Dharmarakshita). (1957).

शब्द–ब्रह्म

E ISSN 2320 – 0871

भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

17 सितम्बर 2025

पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

Gautama Book Center.

6. Dīgha Nikāya (Pali) (D. Shastri, Trans.). (1997). Bauddha Bhārati Granthamālā, Varanasi.

7. Sutta Nipāta (D. Vimalakirti, Trans.). (2005). Samyak Prakashan.

8. Itivuttaka (Pali) (D. Shastri, Ed. & Trans.). (2003). Bauddha Bhārati, Varanasi.

9. Nidānakathā (M. Tiwari, Ed. & Trans.). (1970). Chaukhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.

10. Acharya Baldev. (1999). Bauddha-darshan Mimamsa. Chaukhamba Vidyabhawan, Varanasi.

11. Ambedkar, B. R. (2018). Jāti kā Vināśa (Rajkishore, Trans., 2nd ed.). Forward Press, New Delhi.

12. Ambedkar, B. R. (1992). Buddha aur Unke Dharma kā Bhaviṣya (Dhamma Chari Vimalakirti, Trans.). Sihnad Publication, Pune.

13. Ambedkar, B. R. (2013). Hindū Nāri kā Utthān aur Patan (Śīlapriya Bauddha, Trans., 3rd ed.). Samyak Prakashan, New Delhi.

14. Sangharakshita. (2005). Bodhisattva kā Ādarsha (Pragyamata, Dhammacharini, Trans., 2nd ed.). Triratna Granthamala, Nagpur.

15. Narendra Dev. (2015). Bauddha-dharma Darshan (5th reprint). Motilal Banarsidass Publishers, Delhi.

16. Sangharakshita. (1995). A Guide to the Buddhist Path. Windhorse Publications, Birmingham.

17. Subhuti, D. (1995). Bringing Buddhism to the West: A Life of Sangharakshita. Windhorse Publications, Birmingham.

18. Sangharakshita. (1996). A Survey of Buddhism (8th ed.). Triratna Granthamala, Pune.

19. Sangharakshita. (1995). Vision and Transformation: Buddha's Noble Eightfold Path. Windhorse Publications, Birmingham.

20. Sangharakshita. (2011). Living Ethically. Windhorse Publications, Cambridge.

21. Sangharakshita. (2008). Living with Kindness. Windhorse Publications, Birmingham.

22. Sangharakshita. (1984). The Ten Pillars of Buddhism. Windhorse Publications, Glasgow.

a Samart Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut, Uttar Pradesh, India.

*Address of Corresponding author: * Samart Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut, Uttar Pradesh, India.*